कर्म के भेद-प्रभेद

अष्टकर्माणि ।। ५० ।।

ज्ञानावरणीयं पञ्चविधम्।। ५१।।

दर्शनावरणीयं नवविधम्।। ५२।।

वेदनीयं द्विविधम् ।। ५३।।

मोहनीयमष्टाविंशतिविधम् ।। ५४।।

आयुश्चतुर्विधम् ।। ५५।।

द्विचत्वारिंशद्विधं नाम ।। ५६।।

द्विविधं गोत्रम् ।।५७।।

पञ्चविधमन्तरायम् ।।५८।।

कर्म आठ हैं ।। ५०।।

ज्ञानावरणी कर्म के पाँच प्रकार हैं ।। ५१।।

दर्शनावरणी कर्म के नौ प्रकार हैं।।५२।।

वेदनीय कर्म दो प्रकार का है ।।५३।।

मोहनीय कर्म के अट्ठाईस प्रकार हैं ।। ५४।।

आयु कर्म चार प्रकार का है ।। ५५।।

नाम कर्म के बयालीस प्रकार हैं ।।५६।।

गोत्र कर्म दो प्रकार का है ।।५७।।

अन्तराय कर्म पाँच प्रकार का है ।। ५८ ।।

पुद्गल की तेईस प्रकार की वर्गणाओं में एक कार्मण वर्गणा है। कार्मण वर्गणा आत्मा की अच्छी-बुरी प्रवृत्ति के निमित्त से आकृष्ट होकर आत्मा के साथ सम्पृक्त हो जाती है। आत्मा से सम्बद्ध इन्हीं वर्गणाओं को कर्म कहते हैं। ये कर्म आत्मा की क्षमताओं पर आवरण डालते हैं, उन्हें अवरुद्ध

Scanned by CamScanner

करते हैं तथा आत्मा को परतन्त्र बनाकर नाना दुःखों का पात्र बनाते हैं।

कर्म के मूल भेद

कर्म के मूलतः आठ भेद हैं- १. ज्ञानावरण २. दर्शनावरण ३. वेदनीय ४. मोहनीय ५. आयु ६.नाम ७. गोत्र ८. अन्तराय

ज्ञानावरण कर्म - आत्मा के ज्ञान गुण को आवृत/आच्छादित करता है।

दर्शनावरण कर्म - आत्मा के दर्शन गुण को आवृत/आच्छादित करता है।

वेदनीय कर्म - सुख -दुःख की अनुभूति कराता है।

मोहनीय कर्म - चेतना को मूर्च्छित कर आचार और विचार शक्ति को विकृत करता है।

आयु कर्म - किसी एक गति में एक निश्चित अवधि तक बाँध कर रखता है।

नाम कर्म - अच्छे बुरे शरीर की संरचना करता है।

गोत्र कर्म - उच्च/कुलीन और नीच/अकुलीन घरों में उत्पन्न कराता है। यह प्राणी को अच्छी या बुरी दृष्टि से देखे जाने में निमित्तभूत है।

अन्तराय कर्म - आत्मा की शक्ति को रोकता है।

आठ कर्मों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म 'घातिया कर्म ' कहलाते हैं। घातिया कर्म आत्मा के मौलिक गुणों का घात करते हैं। शेष चार कर्म अघातिया हैं। अघातिया कर्म आत्मगुणों का सीधे घात तो नहीं करते, फिर भी भव भ्रमण कराने में उनका पूरा-पूरा हाथ रहता है।

इन आठ कर्मों के कार्यों को दर्शाने के लिए आठ उदाहरण दिये गये हैं। ज्ञानावरणी कर्म का कार्य कपड़े की पट्टी की तरह है। जिस प्रकार आँख पर बँधी पट्टी दृष्टि की प्रतिबन्धक है, वैसे ही ज्ञानावरण-कर्म ज्ञान-गुण को प्रकट नहीं होने देता। दर्शनावरणी कर्म द्वारपाल की तरह है। जिस प्रकार द्वारपाल की सहमति के बिना किसी महल में प्रवेश नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दर्शनावरण-कर्म जीव को अनन्त-दर्शन करने से रोकता है। 'वेदनीय' कर्म तलवार की धार पर लगे शहद के स्वाद की तरह होता है, जो एक क्षण को सुख देता है, पर उसका परिणाम दुःखद होता है। 'मोहनीय' कर्म मद्य की तरह है। जिस प्रकार मद्य के नशे में व्यक्ति को अपने हित-अहित का विचार नहीं रहता

Scanned by CamScanner

करते हैं तथा आत्मा को परतन्त्र बनाकर नाना दुःखों का पात्र बनाते हैं।

कर्म के मूल भेद

कर्म के मूलतः आठ भेद हैं- १. ज्ञानावरण २. दर्शनावरण ३. वेदनीय ४. मोहनीय ५. आयु ६.नाम ७. गोत्र ८. अन्तराय

ज्ञानावरण कर्म - आत्मा के ज्ञान गुण को आवृत/आच्छादित करता है।

दर्शनावरण कर्म - आत्मा के दर्शन गुण को आवृत/आच्छादित करता है।

वेदनीय कर्म - सुख -दुःख की अनुभूति कराता है।

मोहनीय कर्म - चेतना को मूर्च्छित कर आचार और विचार शक्ति को विकृत करता है।

आयु कर्म - किसी एक गति में एक निश्चित अवधि तक बाँध कर रखता है।

नाम कर्म - अच्छे बुरे शरीर की संरचना करता है।

गोत्र कर्म - उच्च/कुलीन और नीच/अकुलीन घरों में उत्पन्न कराता है। यह प्राणी को अच्छी या बुरी दृष्टि से देखे जाने में निमित्तभूत है।

अन्तराय कर्म - आत्मा की शक्ति को रोकता है।

आठ कर्मों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म 'घातिया कर्म ' कहलाते हैं। घातिया कर्म आत्मा के मौलिक गुणों का घात करते हैं। शेष चार कर्म अघातिया हैं। अघातिया कर्म आत्मगुणों का सीधे घात तो नहीं करते, फिर भी भव भ्रमण कराने में उनका पूरा-पूरा हाथ रहता है।

इन आठ कर्मों के कार्यों को दर्शाने के लिए आठ उदाहरण दिये गये हैं। ज्ञानावरणी कर्म का कार्य कपड़े की पट्टी की तरह है। जिस प्रकार आँख पर बँधी पट्टी दृष्टि की प्रतिबन्धक है, वैसे ही ज्ञानावरण-कर्म ज्ञान-गुण को प्रकट नहीं होने देता। दर्शनावरणी कर्म द्वारपाल की तरह है। जिस प्रकार द्वारपाल की सहमति के बिना किसी महल में प्रवेश नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दर्शनावरण-कर्म जीव को अनन्त-दर्शन करने से रोकता है। 'वेदनीय' कर्म तलवार की धार पर लगे शहद के स्वाद की तरह होता है, जो एक क्षण को सुख देता है, पर उसका परिणाम दुःखद होता है। 'मोहनीय' कर्म मद्य की तरह है। जिस प्रकार मद्य के नशे में व्यक्ति को अपने हित-अहित का विचार नहीं रहता

Scanned by CamScanner

तथा वह कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विचार किये बिना कुछ भी आचरण करता रहता है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म भी जीव को विवेक-शून्य कर उसकी आचार और विचार शक्ति को विकारी बना देता है। 'आयु' कर्म खूँटे की तरह है। जिस तरह खूँटे से बँधा पशु उसके चारों ओर ही घूमता है, वैसे ही आयु कर्म से बँधा जीव उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। 'नाम' कर्म चित्रकार की तरह है। जिस प्रकार चित्रकार छोटे-बड़े, अच्छे-बुरे अनेक प्रकार के चित्रों का निर्माण करता है, उसी प्रकार नामकर्म जीव के चित्र-विचित्र शरीर का निर्माण करता है। 'गोत्र' कर्म कुम्हार की तरह है। जिस प्रकार कुम्हार छोटे-बड़े बर्तनों का निर्माण करता है, उसी प्रकार गोत्र कर्म जीव को उच्च और नीच कुलों में उत्पन्न कराता है। 'अन्तराय' कर्म भण्डारी की तरह है, जिस प्रकार भण्डारी की सहमति के बिना राजकोष से धन नहीं निकाला जा सकता, उसी प्रकार अन्तराय कर्म जीव की अनन्त-शक्ति का प्रच्छादक है।

इस प्रकार ये आठ कर्म के मूल भेद हैं, किन्तु इनकी उत्तर प्रकृतियाँ (प्रभेद) १४८ हैं।

कर्म के उत्तर भेद

१. ज्ञानावरण कर्म - ज्ञानावरण कर्म जीव के ज्ञान गुण को आच्छादित/आवृत करता है, जिसके कारण इस संसार अवस्था में उसका पूर्ण विकास नहीं हो पाता। जिस प्रकार देवता की मूर्ति पर ढका हुआ वस्त्र देवता को आच्छादित कर लेता है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म ज्ञान को आच्छादित किये रहता है। इतना होने पर भी वह जीव की ज्ञान-शक्ति को पूर्णरूप से आवृत नहीं कर पाता। जिस प्रकार दिन में सघन-घटाओं से आच्छादित रहने पर भी सूर्य-प्रकाश का अभाव पूर्णरूप से नहीं हो पाता, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म का तीव्रतम उदय होने पर भी वह जीव की ज्ञान शक्ति को पूरी तरह से नष्ट/आवृत नहीं कर सकता, जिससे कि जीव सर्वथा ज्ञान शून्य होकर जड़वत् हो जाये। ज्ञानावरण कर्म के पाँच उत्तर भेद हैं - १. मतिज्ञानावरण, २. श्रुत-ज्ञानावरण, ३.अवधि-ज्ञानावरण, ४. मन:पर्यय-ज्ञानावरण, ५ केवल-ज्ञानावरण। प्रथम चारों कर्म क्रमश: मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान को आवृत तथा हीनाधिक करते हैं और पाँचवाँ केवलज्ञानावरण-कर्म केवलज्ञान को उत्पन्न नहीं होने देता।

ज्ञानावरण कर्म-बन्ध के कारण - निम्न कारणों से ज्ञानावरण कर्म का विशेष बन्ध होता है।

Scanned by CamScanner

१. ज्ञान, ज्ञानी तथा ज्ञान के साधन के प्रति द्वेष रखने से।

२. ज्ञान-दाता गुरुओं का नाम छिपाने से।

३. ज्ञान, ज्ञानी तथा ज्ञान के साधनों का नाश करने से।

४. ज्ञान के साधनों की विराधना/दुरुपयोग करने से।

५. किसी के ज्ञान में बाधा डालने से।

२. दर्शनावरण कर्म - पदार्थों की विशेषता को ग्रहण किये बिना केवल उनके सामान्य धर्म का अवभास करना दर्शन है। दर्शनावरण कर्म उक्त दर्शन गुण को आवृत करता है। दर्शन गुण के सीमित होने पर ज्ञानोपलब्धि का द्वार बन्द हो जाता है। इसकी तुलना राजा के द्वारपाल से की जा सकती है। द्वारपाल राजा से मिलने में किसी व्यक्ति को बाधा पहुँचाता है। जिस प्रकार द्वारपाल की अनुमति के बिना कोई भी व्यक्ति राजा से नहीं मिल सकता,वैसे ही दर्शनावरण कर्म वस्तुओं के दर्शन को रोकता है। पदार्थों को देखने में अड़चन डालता है। इसकी नौ उत्तर प्रकृतियाँ हैं - १. चक्षु-दर्शनावरण २. अचक्षु दर्शनावरण ३. अवधि-दर्शनावरण ४. केवल-दर्शनावरण, ५. निद्रा, ६. निद्रा-निद्रा, ७ प्रचला, ८. प्रचला-प्रचला, ९ स्त्यान-गृद्धि।

चक्षुदर्शनावरण-कर्म नेत्रों द्वारा होनेवाले सामान्य अवबोध को रोकता है। चक्षु के अलावा शेष इन्द्रियों से होनेवाले सामान्य अवबोध को अचक्षु दर्शनावरण कर्म रोकता है । अवधिदर्शनावरण कर्म अवधि-दर्शन को रोकता है तथा केवलदर्शनावरण कर्म सर्वद्रव्यों और पर्यायों के युगपत् होने वाले सामान्य अवबोध को व्यक्त नहीं होने देता।

हल्की नींद को निद्रा कहते हैं। ऐसी नींद कि प्राणी आवाज लगाते ही जाग उठे, 'निद्रा कर्म' से उत्पन्न होती है। 'निद्रा-निद्रा' कर्म के उदय से ऐसी नींद आती है, जिससे प्राणी बड़ी मुश्किल से जाग पाता है। प्रचला कर्म के उदय से जीव खड़े-खड़े या बैठे-बैठे ही सो जाया करता है। प्रचला-प्रचला कर्म के उदय से नींद में मुख से लार बहने लगती है तथा हाथ-पैर आदि चलायमान हो जाते हैं। स्त्यान-गृद्धि कर्म के उदय से ऐसी प्रगाढ़तम नींद आती है, जिससे व्यक्ति दिन में या रात्रि में उठना-बैठना, चलना आदि अनेक क्रियाएँ निद्रावस्था में ही सम्पन्न कर लेता है।

निद्रा में आत्मा का अव्यक्त उपयोग होता है, अर्थात उसे वस्तु का सामान्य आभास नहीं हो सकता। इसलिए निद्रा के पाँच भेदों को दर्शनावरण

Scanned by CamScanner

कर्म के उत्तर भेदों में परिगणित किया गया है। चक्षु-दर्शनावरण आदि चारों दर्शनावरणी कर्म दर्शन-शक्ति की प्राप्ति में बाधक होते हैं।

दर्शनावरण कर्म-बन्ध के कारण- जिन कारणों से ज्ञानावरण कर्म का बन्ध होता है, दर्शनावरण कर्म भी उन्हीं साधनों से बँधता है। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ ज्ञान और ज्ञान के साधन न होकर, दर्शन और दर्शन के साधनों के प्रति वैसा व्यवहार होने पर, दर्शनावरण कर्म बन्धता है।

३. वेदनीय कर्म- जो कर्म-जीव को सुख या दुःख का अनुभव कराता है, वह वेदनीय कर्म है । यह दो प्रकार का होता है– १. साता वेदनीय एवं २. असाता वेदनीय । जिस कर्म के उदय से प्राणी को अनुकूल विषयों के संयोग से सुख का अनुभव होता है, वह साता वेदनीय कर्म है। जिस कर्म के उदय से प्रतिकूल विषयों का संयोग होने पर दुःख का संवेदन होता है वह असाता वेदनीय कर्म है। वेदनीय कर्म की तुलना मधु से लिप्त तलवार से की गयी है। जिस प्रकार शहद से लिप्त तलवार की धार को चाटने से पहले अल्प-सुख और फिर अधिक दुःख होता है, वैसे ही पौद्गलिक सुख में दुःखों की अधिकता होती है। मधु को चाटने के समान, साता-वेदनीय है और जीभ कटने की तरह असाता-वेदनीय है।

वेदनीय कर्म-बन्ध के कारण- सभी प्राणियों पर अनुकम्पा रखने से, व्रतियों की सेवा करने से, दान देने से, हृदय में शान्ति और पवित्रता रखने से, साधुओं या श्रावकों के व्रत पालन करने से, कषायों को वश में रखने से साता-वेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

इसके विपरीत, स्व-पर को दुःख देने से, शोकमग्न रहने से, किसी को पीड़ा पहुँचाने आदि आचरण करने से दुःख के कारणभूत असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है। असाता वेदनीय कर्म के फलस्वरूप देह सदा रोग-पीड़ित रहती है तथा बुद्धि और शुभ क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं। यह प्राणी अपने हित के उद्योग में तत्पर नहीं हो सकता।

४. मोहनीय कर्म - जो कर्म आत्मा को मोहित करता है, मूढ़ बनाता है, वह मोहनीय कर्म है। इस कर्म के कारण जीव मोह ग्रस्त होकर संसार में भटकता है। मोहनीय कर्म संसार का मूल है। इसलिए इसे कर्मों का राजा कहा गया है। समस्त दुःखों की प्राप्ति मोहनीय कर्म से ही होती है। इसीलिए इसे अरि या शत्रु भी कहते हैं। अन्य सभी कर्म मोहनीय के अधीन हैं। मोहनीय कर्म राजा है, तो शेष कर्म प्रजा। जैसे राजा के अभाव में प्रजा कोई कार्य नहीं कर

Scanned by CamScanner

सकती, वैसे ही मोहनीय के अभाव में अन्य कर्म अपने कार्य में असमर्थ रहते हैं। यह आत्मा के वीतराग-भाव तथा शुद्ध स्वरूप को विकृत करता है, जिससे आत्मा राग-द्वेषादि विकारों से ग्रस्त हो जाता है। यह कर्म स्वपर-विवेक एवं स्वरूप-रमण में बाधा डालता है।

इस कर्म की तुलना मदिरापान से की गयी है। जैसे मदिरा पीने से मानव परवश हो जाता है, उसे अपने तथा पर के स्वरूप का भान नहीं रहता, वह हिताहित के विवेक से शून्य हो जाता है, वैसे ही मोहनीय कर्म के उदय से जीव को तत्त्व-अतत्त्व का भेद-विज्ञान नहीं हो पाता। वह संसार के विकारों में उलझ जाता है।

मोहनीय कर्म दो प्रकार का है— दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय

(क) दर्शन मोहनीय - दर्शन मोहनीय कर्म आत्मा के दर्शन गुण/श्रद्धान को विकार ग्रस्त बना देता है। इस कर्म के उदय से व्यक्ति अपने सम्यक् स्वरूप को भलीभाँति पहिचान नहीं पाता है। जैसे-मदिरा पीने से व्यक्ति की बुद्धि मूर्च्छित हो जाती है, वैसे ही इस कर्म के उदय से आत्मा का विवेक विलुप्त हो जाता है। वह हित-अहित, निज-पर का भेद नहीं कर पाता। परिणामतः वह दिग्मूढ़ बनकर घातक इन्द्रिय विषयों को ही प्रिय मानने लगता है। शरीर, स्त्री, धन, संतति जैसी पर वस्तुओं के प्रति घोर ममता का शिकार हो जाता है। वह सांसारिक मोहजाल में पड़कर मोक्ष लक्ष्य से दूर हो जाता है।

दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं- १. मिथ्यात्व, २. सम्यक्-मिथ्यात्व, ३. सम्यक्त्व प्रकृति ।

१. मिथ्यात्व कर्म - जो कर्म तत्त्व में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होने देता और विपरीत श्रद्धा उत्पन्न कराता है, वह मिथ्यात्व कर्म है। इस कर्म के उदय से जीव की वह मूढ़ अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिससे वस्तु के वास्तविक स्वरूप के ग्रहण की योग्यता सर्वथा तिरोहित हो जाती है।

२. सम्यक्-मिथ्यात्व- तत्त्व और अतत्त्व दोनों में युगपत् श्रद्धान उत्पन्न करनेवाला कर्म सम्यक्-मिथ्यात्व कर्म कहलाता है। इस कर्म के उदय में सम्यक् और मिथ्यारूप मिश्रित श्रद्धान उत्पन्न होता है। इसलिए इसे मिश्र मोहनी कर्म भी कहते हैं।

३. सम्यक्त्व प्रकृति - जो कर्म सम्यक्त्व को तो नहीं रोकता, किन्तु उसमें चल, मलिन और अगाढ़ दोष उत्पन्न करता है, वह सम्यक्त्व मोहनीय कर्म है।

इस प्रकार मिथ्यात्व-प्रकृति अश्रद्धा रूप होती है तथा सम्यक्-

Scanned by CamScanner

मिथ्यात्व प्रकृति श्रद्धा और अश्रद्धा से मिश्रित होती है तथा सम्यक्त्व-प्रकृति से श्रद्धा में शिथिलता या अस्थिरता होती है, जिसके कारण चल, मलिन और अगाढ़ ये तीन दोष उत्पन्न होते हैं। यह प्रकृति सम्यक्त्व का घात तो नहीं करती, परन्तु शंका आदि दोषों को उत्पन्न करती है।

(ख) चारित्र मोहनीय - चारित्र मोहनीय कर्म आत्मा के चारित्र-गुण को विकृत कर देता है। यह कर्म जीव की सन्मार्ग यात्रा में बाधा उपस्थित करता है। इस कर्म के उदय से जीव के आचरण में विकार आ जाता है। वह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे आदर्शों को अपना नहीं पाता। यह कर्म आत्मा को राग-द्वेष आदि विकारों में उलझाकर स्वरूपरमण में बाधा डालता है। कषाय-वेदनीय और नोकषाय-वेदनीय के भेद से चारित्र मोहनीय के भी दो भेद हैं। कषाय-वेदनीय मुख्यतः चार प्रकार का है-

१. क्रोध, २. मान, ३. माया और ४. लोभ।

क्रोध आदि चारों कषाय तीव्रता व मन्दता की दृष्टि से चार-चार प्रकार की होती हैं- अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान तथा संज्वलन। इस प्रकार कषाय वेदनीय के कुल सोलह भेद हैं, जिनके उदय से क्रोधादिक भाव होते हैं।

(अ) अनन्तानुबन्धी - अनन्तानुबन्धी के प्रभाव से जीव को अनंतकाल तक भव-भ्रमण करना पड़ता है। इसके उदय में सम्यक्त्व और चारित्र दोनों ही नहीं हो पाते।

(ब) अप्रत्याख्यान- प्रत्याख्यान का अर्थ है– त्याग। जिस कषाय के उदय से ईषत् त्याग अर्थात् देशसंयम भी ग्रहण न किया जा सके, वह अप्रत्याख्यान कषाय कहलाती है।

(स) प्रत्याख्यान- जिस कषाय के उदय से सकल-संयम को ग्रहण न किया जा सके वह प्रत्याख्यान कषाय है।

(द) सञ्ज्वलन- जिस कषाय के उदय से सकल-संयम तो हो जाए, किन्तु आत्म-स्वरूप में स्थिरता रूप यथाख्यात चारित्र न हो, उसे सञ्ज्वलन कषाय कहते हैं।

नोकषाय वेदनीय - जिनका उदय कषायों के साथ होता है या जो कषायों से प्रेरित होती है, वह नोकषाय है। इन्हें अकषाय भी कहते हैं। नोकषाय या अकषाय का तात्पर्य कषायों का अभाव नहीं, अपितु ईषत् कषाय है। इनके

Scanned by CamScanner

नौ भेद हैं- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा नपुंसकवेद। इनका अर्थ इनके नामों से ही स्पष्ट है।

इस प्रकार दर्शन-मोहनीय के तीन तथा कषाय-वेदनीय के सोलह और नोकषाय वेदनीय के नौ मिलकर मोहनीय कर्म के कुल अट्ठाईस भेद हैं।

मोहनीय कर्म के बन्ध का कारण - सत्यमार्ग की अवहेलना करने से और असत्य मार्ग का पोषण करने से तथा आचार्य, उपाध्याय, गुरु, साधु-संघ आदि सत्य-पोषक आदर्शों का तिरस्कार करने से दर्शन-मोहनीय कर्म का बन्ध होता है, जिसके फलस्वरूप जीव अनन्त संसार का पात्र बनता रहता है।

स्वयं पाप करने से तथा दूसरों को कराने से, तपस्वियों की निन्दा करने से, धार्मिक कार्यों में विघ्न उपस्थित करने से, मद्य-माँस आदि का सेवन करने और कराने से, निर्दोष व्यक्तियों में दूषण लगाने से चारित्र मोहनीय कर्म का बन्ध होता है।

आयु कर्म - आयु कर्म के चार भेद है— देवायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु और नरकायु।

जीव को किसी विवक्षित शरीर में टिके रहने की अवधि का नाम आयु है। इस आयु का निमित्तभूत कर्म 'आयु कर्म' कहलाता है। जीवों के जीवन की अवधि का नियामक आयु है। इस कर्म के अस्तित्व से प्राणी जीवित रहता है और क्षय होने पर मृत्यु के मुख में जाता है। मृत्यु का कोई देवता या उस जैसी कोई अन्य शक्ति नहीं है, अपितु आयु कर्म के सद्भाव और क्षय पर ही जन्म और मृत्यु अवलम्बित है। इस कर्म की तुलना कारागार से की गयी है। जैसे न्यायाधीश अपराधी को अपराध के अनुसार नियत समय के लिए कैद में डाल देता है, अपराधी की इच्छा होने पर भी वह अपनी अवधि को पूर्ण किये बिना मुक्त नहीं हो सकता, वैसे ही आयु कर्म के कारण जीव देह-मुक्त नहीं हो सकता। आयु कर्म का कार्य सुख-दुःख देना नहीं है, किन्तु निश्चित समय तक किसी एक भव में रोके रहना मात्र है।

आयु दो प्रकार की होती है— अपवर्तनीय और अनपवर्तनीय।

कारण प्राप्त होने पर जिस आयु की काल-मर्यादा में कमी हो सके, उसे अपवर्तनीय आयु कहते हैं तथा बड़े-बड़े कारण आने पर भी निर्धारित आयु की काल-मर्यादा एक क्षण को भी कम न हो, उसे अनपवर्तनीय आयु कहते हैं। अपवर्तनीय आयु विष-भक्षण, वेदना, रक्त-क्षय, शस्त्र-घात, पर्वत से पतन आदि निमित्तों के मिलने से अपनी अवधि से पूर्व ही समाप्त हो सकती है। इसे ही

Scanned by CamScanner

'अकालमरण' या 'कदलीघात मरण' कहते हैं। जैसे यदि किसी की १०० वर्ष की आयु है तो यह अनिवार्य नहीं कि वह १०० वर्ष तक जीवित रहे। वह १०० वर्ष की अवधि में कभी भी मरण प्राप्त कर सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपनी शेष आयु को अगली योनि या पर्याय में जाकर भोगता है, अपितु मृत्यु के क्षण में ही वह अपनी शेषायु को भोग लेता है। जैन-दर्शन के नियमानुसार आयु के क्षय होने पर ही मरण होता है। जब तक वर्तमान भव की आयु कर्म का एक भी परमाणु शेष रहता है, तब तक मरण नहीं हो सकता। इस दृष्टि से एक आयु को दूसरी योनि में जाकर भोगना मात्र कल्पना की उड़ान है।

इसे ऐसे समझें- किसी पेट्रोमेक्स में इतना तेल भरा हो कि वह अपने क्रम से जलने पर छह घण्टे जलता है। यदि उसका बर्नर लीक करने लगे, तो वह पूरा तेल जल्दी ही जल जाता है तथा टैंक के फट जाने पर तो सारा तेल उसी क्षण जल जाता है। इसी प्रकार आयु कर्म भी तेल की तरह है। जब तक कोई प्रतिकूल निमित्त नहीं आते, तब तक वह अपने क्रम से उदय में आता है तथा प्रतिकूल निमित्तों के जुटने पर वह अपने क्रम का उल्लंघन भी कर देता है। यह भी सम्भव है कि वह एक अन्तर्मुहूर्त में ही अपनी करोड़ों वर्ष की आयु को भोग कर समाप्त कर डाले।

देव, नारकी, भोग-भूमि के जीव, चरम देहधारी तीर्थंकर, अनपवर्तनीय आयुवाले होते हैं। इनकी आयु का घात समय-पूर्व नहीं होता। इसीलिए इनका अकाल मरण भी नहीं होता। शेष जीवों में दोनों प्रकार की सम्भावना है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि जैन-दर्शन के नियमानुसार आयु कर्म घट तो सकता है, किन्तु पूर्व में बाँधी हुई आयु में एक क्षण की भी वृद्धि नहीं हो सकती।

आयु कर्म के बन्ध सम्बन्धी विशेष नियम

आठ मूल कर्मों में आयु कर्म का बन्ध सदा नहीं होता। इसके बन्ध का विशेष नियम है। अपने जीवन की दो-तिहाई आयु व्यतीत होने पर ही आयु कर्म बँधता है, वह भी अन्तर्मुहूर्त तक। इसे अपकर्षकाल कहते हैं। एक मनुष्य/तिर्यञ्च के जीवन में ऐसे आठ अवसर आते हैं, जिनमें वह आयु बाँधने के योग्य होता है। इसके बीच वह आयु का बन्ध कर ही लेता है। अन्यथा मृत्यु से अन्तर्मुहूर्त पूर्व तो आयु का बन्ध हो ही जाता है। कोई भी जीव नयी आयु का बन्ध किये बिना, मरण नहीं करता तथा नूतन भव को प्राप्त नहीं होता। आयु बन्ध की यह प्रक्रिया समाप्त हो जाने पर ही जीव मुक्त हो पाता है।

मान लीजिए किसी व्यक्ति की ८१ वर्ष की आयु हो, तो वह ५४ वर्ष

Scanned by CamScanner

की अवस्था तक आयु कर्म के बन्ध के योग्य नहीं होता। वह पहली बार आयु कर्म का बन्ध ५४ वर्ष की अवस्था में कर सकता है। यदि उस काल में आयु कर्म का बन्ध न हो, तो शेष २७ में से दो-तिहाई अर्थात् १८ वर्ष बीतने पर यानी ७२ वर्ष की अवस्था में उसे आयु का बन्ध हो सकता है। उस काल में भी न हो तो शेष नौ वर्ष में से छह वर्ष बीतने पर, अर्थात् ७८ वर्ष की अवस्था होने पर आयु बँधेगी। उसमें भी न हो तो शेष तीन में से दो वर्ष बीतने पर अर्थात् ८० वर्ष की अवस्था में और यदि उसमें भी न हो तो शेष एक वर्ष में से ८ माह बीतने पर अर्थात् ८० वर्ष ८ माह की अवस्था में, यदि उसमें भी न बँधे तो शेष चार माह में से ८० दिन बीत जाने के बाद अर्थात् ८० वर्ष, १० माह और २० दिन की अवस्था में। यदि उसमें भी न बँधे, तो शेष ४० दिन के त्रिभाग, २६ दिन १६ घण्टे बीत जाने के उपरान्त अर्थात् ८० वर्ष, ११ माह, १६ दिन तथा १६ घण्टे की अवस्था में। यदि इसमें भी न बँधे, तो शेष अवधि में से ८ दिन, २१ घण्टे तथा २० मिनिट बीत जाने पर अर्थात् ८० वर्ष, ११ माह, २५ दिन, १३ घण्टे, २० मिनिट की आयु में आयु कर्म का बन्ध हो जाता है, यदि उसमें भी न हो पाये तो मरण के अन्तर्मुहूर्त-पूर्व तो आयु बन्ध कर ही लेता है।

आयु बन्ध का यह नियम मनुष्य और तिर्यञ्चों के लिए है। देव, नारकी तथा भोग-भूमि के जीव अपने जीवन के ६ माह शेष रहने पर आयु बन्ध के योग्य होते हैं। इस छह माह में उनके भी पूर्ववत् आठ अपकर्ष होते हैं।

आयु-बन्ध के कारण

हिंसा आदि कार्यों में निरन्तर प्रवृत्ति, दूसरे के धन का हरण, इन्द्रिय विषयों में अत्यन्त आसक्ति, तीव्र परिग्रह-लुब्धता तथा मरण के समय क्रूर परिणामों से "नरकआयु" का बन्ध होता है।

धर्मोपदेश में मिथ्या बातों को मिलाकर उसका प्रचार करना, शील रहित जीवन बिताना, अतिसन्धानप्रियता अर्थात् विश्वासघात, वञ्चना और छल-कपट करना आदि "तिर्यञ्च आयु" के बन्ध के कारण हैं।

स्वभाव से विनम्र होना, भद्र प्रकृति का होना, सरल व्यवहार करना, अल्प कषाय का होना तथा मरण के समय संक्लेश रूप परिणति का नहीं होना आदि "मनुष्य आयु" के बन्ध के कारण है।

संयम पालने से, तप करने से, व्रतों के आचरण से, कषाय की मन्दता से, धर्म-कथा के श्रवण से, दान देने से, धर्मायतनों की सेवा तथा रक्षा करने से तथा सम्यग्दृष्टि होने से "देव आयु" का बन्ध होता है।

Scanned by CamScanner

नाम-कर्म

"नाना मिनोतीति नाम" जो जीव के चित्र-विचित्र रूप बनाता है वह नाम-कर्म है। इसकी तुलना चित्रकार से की गई है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका और विविध रंगों के योग से सुन्दर-असुन्दर आदि अनेक चित्र निर्मित करता है, उसी तरह नामकर्म रूपी चितेरा, जीव के भले-बुरे, सुन्दर-असुन्दर, लम्बे-नाटे, मोटे-पतले, छोटे-बड़े, सुडौल-बेडौल आदि शरीरों का निर्माण करता है। जीव की विविध आकृतियों एवं शरीरों का निर्माण इसी नाम-कर्म की कृति है। विश्व की विचित्रता में नाम-कर्म रूप चितेरे की कला अभिव्यक्त होती है। इस नाम-कर्म के मुख्य बयालीस भेद हैं तथा इसके उपभेद कुल तेरानबे हो जाते हैं-

१. गति- जिस नाम-कर्म के उदय से जीव एक जन्म-स्थिति से अगली जन्म-स्थिति में जाता है, वह गतिनाम-कर्म है । गतियाँ चार हैं– देवगति, मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति और नरकगति ।

२. जाति- जिस नाम-कर्म के उदय से जीवों में एक विशिष्ट तरह का सादृश्य हो उसे जातिनाम-कर्म कहते हैं। जातियाँ पाँच हैं- एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय तथा पाँच इन्द्रिय।

३. शरीर- शरीर की रचना करनेवाले कर्म को शरीरनाम-कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं– औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणशरीर।

४. अंगोपांग- जिस कर्म के उदय से शरीर के अंग और उपांगों की रचना होती है, अर्थात् शरीर के अवयवों और प्रत्यवयवों की रचना करने वाला कर्म अंगोपांग नाम-कर्म है। इसके तीन भेद हैं– औदारिक, वैक्रियिक व आहारक। तीनों अपने-अपने शरीर के अनुरूप अंगोपांग की रचना करते हैं। तैजस और कार्मण शरीर सूक्ष्म होने के कारण अंगोपांग रहित होते हैं।

५. निर्माण- शरीर के अंगोपांग की समुचित रूप से रचना करने वाला कर्म निर्माण नाम कर्म है।

६. शरीर-बन्धन- शरीर का निर्माण करनेवाले पुद्गलों को परस्पर बाँधनेवाला कर्म शरीर-बन्धन नाम कर्म हैं। पूर्वोक्त शरीर के अनुसार यह पाँच प्रकार का है।

७. शरीर संघात - निर्मित शरीर के परमाणुओं को परस्पर छिद्ररहित बनाकर एकीकृत करनेवाले कर्म को शरीर-संघात नाम कर्म कहते हैं। इसके

Scanned by CamScanner

अभाव में शरीर तिल के लड्डू की तरह अपुष्ट रहता है। यह भी शरीरों की तरह पाँच प्रकार का होता है।

८. संस्थान- शरीर को विविध आकृतियाँ प्रदान करनेवाला कर्म संस्थान नाम-कर्म है। इसके छह भेद हैं–

- **समचतुरस्र संस्थान-** सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जीव के सुन्दर, सुडौल और समानुपातिक शरीर बनानेवाले कर्म को 'समचतुरस्र-संस्थान' नाम-कर्म कहते हैं।
- **न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान-** 'न्यग्रोध' अर्थात् वट के वृक्ष की तरह, नाभि से ऊपर की ओर मोटे और नीचे की ओर पतले शरीर का आकार बनानेवाले कर्म को न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नाम कर्म कहते हैं।
- **स्वाति-** सर्प की वामी की तरह नाभि के ऊपर पतले तथा नीचे की ओर मोटे आकार का शरीर बनानेवाला कर्म 'स्वाति संस्थान नाम-कर्म' है।
- **कुब्जक-** कुबड़ा शरीर बनानेवाले कर्म को कुब्जक संस्थान नाम-कर्म कहते हैं।
- **वामन संस्थान-** बौना शरीर बनानेवाले कर्म को 'वामन-संस्थान' नाम-कर्म कहते हैं।
- **हुण्डक-** अनिर्दिष्ट आकार को हुण्डक कहते हैं। ऐसे अनिर्दिष्ट आकार का विचित्र शरीर बनानेवाले कर्म को 'हुण्डक संस्थान' नाम-कर्म कहते हैं।

९. संहनन- अस्थि बन्धनों में विशिष्टता को उत्पन्न करनेवाले कर्म को 'संहनन नाम कर्म' कहते हैं। वेष्टन, त्वचा, अस्थि और कील के बन्धन की अपेक्षा इसके छह भेद हैं- १. वज्र-वृषभ नाराच संहनन २. वज्र-नाराच संहनन ३. नाराच संहनन ४. अर्ध-नाराच संहनन ५. कीलक संहनन ६. असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन।

१०. वर्ण- शरीर को वर्ण (रंग) प्रदान करनेवाले कर्म को 'वर्ण नाम-कर्म' कहते हैं। यह कृष्ण, नील, रक्त, पीत एवं श्वेत रूप पाँच प्रकार का होता है।

११. गंध- शरीर को सुगन्ध एवं दुर्गन्ध प्रदान करनेवाले कर्म को 'गन्ध-नाम-कर्म' कहते हैं।

१२. रस- शरीर में तिक्त, कटु, अम्ल, मधुर और कसैला रस

Scanned by CamScanner

अर्थात् स्वाद उत्पन्न करनेवाले कर्म को 'रस नाम-कर्म' कहते हैं।

१३. स्पर्श- हल्का, भारी, कठोर, मृदु, शीत, उष्ण तथा स्निग्ध, रुक्ष आदि स्पर्श के भेदों से शरीर को प्रतिनियत स्पर्श उत्पन्न करानेवाला कर्म 'स्पर्श-नाम-कर्म' कहलाता है।

१४. आनुपूर्व्य- देह-त्याग के बाद नूतन शरीर धारण करने के लिए होनेवाली गति को 'विग्रहगति' कहते हैं। विग्रहगति में पूर्व शरीर का आकार बनानेवाले कर्म को 'आनुपूर्व्य नाम-कर्म' कहते हैं। गतियों के आधार पर यह चार प्रकार का है।

१५. अगुरुलघु- जो कर्म शरीर को न तो लौह पिण्ड की तरह भारी, न ही रुई के पिण्ड की तरह हल्का होने दे, वह 'अगुरुलघु नाम-कर्म' है। इस कर्म से शरीर का आयतन बना रहता है। इसके अभाव में जीव स्वेच्छा से उठ-बैठ भी नहीं सकता।

१६. उपघात- इस कर्म के उदय से जीव विकृत बने हुए अपने ही अवयवों से कष्ट पाता है। जैसे प्रतिजिह्वा और चोरदन्त आदि।

१७. परघात- दूसरों को घात करने के योग्य तीक्ष्ण नख, सींग, दाढ़ आदि अवयवों को उत्पन्न करनेवाले कर्म को 'परघात नाम-कर्म' कहते हैं।

१८. उच्छवास- इस कर्म की सहायता से श्वासोच्छ्वास संचालित होता है।

१९. आतप- इस कर्म के उदय से अनुष्ण शरीर में उष्ण प्रकाश निकलता है। यह कर्म सूर्य और सूर्यकान्त मणियों में रहनेवाले एकेन्द्रियों को होता है। उनका शरीर शीतल होता है तथा ताप उष्ण।

२०. उद्योत- चन्द्रकान्त मणि और जुगनू आदि की तरह शरीर में शीतल प्रकाश उत्पन्न करनेवाला कर्म 'उद्योत नाम-कर्म' है।

२१. विहायोगति- इस कर्म के उदय से जीव की अच्छी या बुरी चाल होती है। यह प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से दो प्रकार का है। हाथी, हंस आदि की प्रशस्त चाल को प्रशस्त विहायोगति तथा ऊँट, गधा आदि की अप्रशस्त चाल को 'अप्रशस्त विहायोगति' कहते हैं। यहाँ गति का अर्थ गमन या चाल है।

२२. प्रत्येक शरीर- जिस कर्म के उदय से एक शरीर का एक ही

Scanned by CamScanner

जीव स्वामी हो, वह 'प्रत्येक शरीर नाम-कर्म' है।

२३. साधारण- जिस कर्म के उदय से अनन्त जीवों को एक ही शरीर प्राप्त हो वह 'साधारण नाम-कर्म' है।

२४. त्रस - जिस कर्म के उदय से द्वि-इन्द्रियादि जीवों में जन्म हो उसे 'त्रस नाम-कर्म' कहते हैं।

२५. स्थावर- पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति आदि एकेन्द्रियों में उत्पन्न करानेवाला कर्म 'स्थावर नाम-कर्म' है।

२६. बादर- स्थूल शरीर उत्पन्न करानेवाला कर्म 'बादर नाम-कर्म' है।

इस कर्म के उदय से युक्त जीव स्वयं दूसरों से बाधित होता है और दूसरों को बाधा पहुँचाता है।

२७. सूक्ष्म- सूक्ष्म अर्थात् दूसरों को बाधित एवं दूसरों से बाधित न होनेवाले शरीर को उत्पन्न करनेवाला कर्म 'सूक्ष्म नाम-कर्म' है। इस कर्म का उदय मात्र एकेन्द्रिय जीवों को होता है।

२८. पर्याप्ति- जिस कर्म के उदय से जीव स्व-योग्य आहारादिक पर्याप्तियों को पूर्ण कर सके, उसे 'पर्याप्ति नाम-कर्म' कहते हैं।

२९. अपर्याप्ति- जिस कर्म के उदय से जीव स्व-योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण न कर सके, उसे 'अपर्याप्ति नाम-कर्म' कहते हैं।

३०. स्थिर- शरीर के अस्थि, माँस, मज्जा आदि धातु, उपधातुओं को यथास्थान स्थिर रखनेवाले कर्म को 'स्थिर नाम-कर्म' कहते हैं।

३१. अस्थिर- शरीर के धातु तथा उपधातुओं को अस्थिर रखने वाला कर्म 'अस्थिर नाम-कर्म' है।

३२. शुभ- शरीर के अवयवों को सुन्दर बनानेवाला कर्म 'शुभ नाम-कर्म' है।

३३. अशुभ- 'अशुभ नाम-कर्म' असुन्दर शरीर प्राप्त कराता है।

३४. सुभग- सौभाग्य को उत्पन्न करनेवाला कर्म 'सुभग नाम-कर्म' है। अथवा जिस कर्म के उदय से सबको प्रीति करानेवाला शरीर प्राप्त होता है, उसे सुभग नाम-कर्म कहते हैं।

३५. दुर्भग- दुर्भग नाम-कर्म गुण युक्त होने पर भी अन्य प्राणियों में

Scanned by CamScanner

अप्रीति उत्पन्न करानेवाला शरीर प्रदान करता है।

३६. सुस्वर- कर्णप्रिय स्वर उत्पन्न करानेवाला कर्म 'सुस्वर नाम-कर्म' हैं।

३७. दुःस्वर - 'दुःस्वर नाम कर्म' के उदय से कर्ण-कटु, कर्कश स्वर प्राप्त होता है।

३८. आदेय- इस कर्म के उदय से जीव बहुमान्य एवं आदरणीय होता है। प्रभायुक्त शरीर भी 'आदेय' नाम-कर्म की देन है।

३९. अनादेय- 'अनादेय' कर्म के उदय से अच्छा कार्य करने पर भी गौरव प्राप्त नहीं होता। यह निष्प्रभ शरीर का भी कारण है।

४०. यशःकीर्ति - जिस कर्म के उदय से लोक में यश, कीर्ति, ख्याति और प्रतिष्ठा मिलती है वह 'यशः कीर्ति नाम-कर्म' है।

४१. अयशः कीर्ति- इस कर्म के उदय से अपयश मिलता है।

४२. तीर्थंकर - 'तीर्थंकर' नाम-कर्म त्रिलोक पूज्य एवं धर्म-तीर्थ का प्रवर्तक बनाता है।

इस प्रकार नाम कर्म के मूल बयालीस भेद तथा उत्तर भेदों को मिलाने पर कुल तेरानवे (९३) भेद हो जाते हैं। इनमें कुछ शुभ और कुछ अशुभ होते हैं।

नाम-कर्म के बन्ध का कारण

मन-वचन-काय की कुटिलता अर्थात् सोचना कुछ, बोलना कुछ और करना कुछ, इसी प्रकार अन्यों से कुटिल प्रवृत्ति कराना, मिथ्या दर्शन, चुगलखोरी, चित्त की अस्थिरता, परवञ्चन की प्रवृत्ति, झूठे माप-तौल आदि रखने से अशुभ नाम-कर्म का बन्ध होता है।

इसके विपरीत मन-वचन-काय की सरलता, चुगलखोरी का त्याग, सम्यग्दर्शन, चित्त की स्थिरता आदि शुभ नाम-कर्म के बन्ध के कारण हैं। तीर्थंकर प्रकृति नाम-कर्म की शुभतम प्रकृति है, इसका बन्ध भी शुभतम परिणामों से होता है। तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध के सोलह कारण बताये गये हैं।

सम्यक् दर्शन की विशुद्धि, विनय-सम्पन्नता, शील और व्रतों का निर्दोष परिपालन, निरन्तर ज्ञान-साधना, मोक्ष की ओर प्रवृत्ति, संसार से सतत भीति, शक्ति के अनुसार तप और त्याग, भले प्रकार की समाधि, साधुजनों की

Scanned by CamScanner

सेवा/सत्कार, पूज्य आचार्य, बहुश्रुत व शास्त्र के प्रति भक्ति, आवश्यक धर्म कार्यों का निरन्तर पालन, धार्मिक प्रोत्साहन व धर्मी जनों के प्रति वात्सल्य ये सब तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध का कारण हैं।

गोत्र-कर्म

लोक-व्यवहार सम्बन्धी आचरण को गोत्र माना गया है। जिस कुल में लोक पूज्य आचरण की परम्परा है, उसे 'उच्च गोत्र' कहते हैं तथा जिसमें लोकनिन्दित आचरण की परम्परा है, उसे 'नीच गोत्र' नाम दिया गया है। इन कुलों में जन्म दिलानेवाला कर्म 'गोत्र-कर्म' कहलाता है।

इस कर्म की तुलना कुम्हार से की गयी है। जैसे-कुम्हार अनेक प्रकार के घड़ों का निर्माण करता है। उनमें से कितने ही ऐसे होते हैं, जिन्हें लोग कलश बनाकर चन्दन, अक्षत आदि मंगल द्रव्यों से अलंकृत करते हैं और कितने ही ऐसे होते हैं, जिनमें मदिरा आदि निन्द्य पदार्थ रखे जाते हैं, इसलिए निम्न माने जाते हैं। इसी प्रकार गोत्र कर्म के उदय से जीव कुलीन/पूज्य और अपूज्य/अकुलीन घरों में उत्पन्न होता है। गोत्र कर्म दो प्रकार का होता है– १. उच्च गोत्र तथा २. नीच गोत्र।

गोत्र-कर्म के बन्ध का कारण

पर निन्दा, आत्म-प्रशंसा, दूसरे के सद्भूत/विद्यमान गुणों का आच्छादन तथा अपने असद्भूत/अविद्यमान गुणों को प्रकट करना, यह सब नीच गोत्र के बन्ध के कारण हैं। इसके विपरीत अपनी निन्दा, दूसरों की प्रशंसा, अपने गुणों का आच्छादन, पर के गुणों का उद्भावन, गुणाधिकों के प्रति विनम्रता तथा ज्ञानादि गुणों में श्रेष्ठ रहते हुए भी, उसका अभिमान न करना, ये सब उच्च गोत्र के बन्ध के कारण हैं।

अन्तराय-कर्म

जो कर्म विघ्न डालता है, उसे अन्तराय-कर्म कहते हैं। इस कर्म के कारण आत्मशक्ति में अवरोध उत्पन्न होता है। अनुकूल साधनों और आन्तरिक इच्छा के होने पर भी जीव इस कर्म के कारण अपनी मनोभावना को पूर्ण नहीं कर पाता।

इस कर्म को भण्डारी से उपमित किया गया है। जिस प्रकार किसी दीन-दुःखी को देखकर दया से द्रवीभूत राजा दान देने का आदेश करता है, फिर

Scanned by CamScanner

भी भण्डारी बीच में अवरोधक बन जाता है, वैसे ही यह अन्तराय-कर्म जीव को दान-लाभादिक कार्यों में अवरोध उत्पन्न करता है। इसके पाँच भेद हैं–

१. जिस कर्म के उदय से दान देने की अनुकूल सामग्री और पात्र की उपस्थिति में भी दान देने की भावना न हो, वह 'दानान्तराय कर्म' है।

२. जिस कर्म के उदय से बुद्धिपूर्वक श्रम करने पर भी लाभ होने में बाधा हो वह 'लाभान्तराय कर्म' है।

३. जिस कर्म के उदय से प्राप्त भोग्य वस्तु का भोग न किया जा सके, वह 'भोगान्तराय कर्म' है।

४. जिस कर्म के उदय से प्राप्त उपभोग्य वस्तु का उपभोग न किया जा सके, वह 'उपभोगान्तराय कर्म' है।

५. जिस कर्म के उदय से सामर्थ्य होते हुए भी कार्यों के प्रति उत्साह न हो, उसे 'वीर्यान्तराय कर्म' कहते हैं।

अन्तराय कर्म के बन्ध के कारण- दान आदि में बाधा उपस्थित करने से, जिनपूजा का निषेध करने से, निर्माल्य द्रव्य/देव द्रव्य का सेवन करने से पापों में रत रहने से, मोक्ष-मार्ग में दोष बताकर विघ्न डालने से अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।

Scanned by CamScanner